International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232
Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 5; September 2017; Page No. 76-78

कुमार अंबुज की कविता संग्रह 'अतिक्रमण' में व्यंग्य की अभिव्यक्ति

रंगस्वामी एन
सहायक प्रोफसर, हिंदी विभाग, राजीव गाँधी मोमोरियल आर्टस आन्ड साइंस क़ॉलेज, अट्टपाडी, पालक्काड़, केरल, भारत

प्रस्तावना

वर्तमान साहित्य कठिन समय से गुज़र रहा है। भूमंडलीकरण, उदारी करण, उपभोक्तावाद, बाज़ारवाद, उपनिवेशवाद, नवउपनिवेशवाद, आदि आज के साहित्य की चर्चा का विषय है। आज कल समाज की गतिविधियों को शब्दबद्ध करना साहित्यकार के सामने बड़ी चुनौती का कार्य बन गया है। इन चुनौतियों को पूरा करके वर्तमान साहित्य जनता की विह्वलता, विपन्नता की पहचान कराती है।

दरअसल समकालीन साहित्य एवं साहित्यकार समाज के प्रति प्रतिबद्ध हैं। प्रतिक्रिया विहीन समाज को जाग उठाने की चेष्टा इसके तहत किया जाता है। वर्तमान परिस्थिति की बहुविध समस्याओं का निवारण और निर्णयन इस युग के सृजनात्मक हस्तक्षेप है। वर्तमान साहित्य की प्रमुख मुद्दा है- स्त्री, आदिवासी, दलित, भूमंडलीकरण, विश्वग्राम की अवधारणा, उपनिवेशववाद, बाज़ारीकरण, उपभोक्तावादी संस्कृति आदि। इनकी सही पहचान वर्तमान या समकालीन साहित्य में खूब मिलता है। जनता को सही दिशा दिखाने में समकालीन साहित्य सफल निकला है।

"काव्य संचित अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है। जीवन के विभिन्न पहलुओं की गहराई में गोता लगाकर कवि काव्य रूपी मोती निकालता है। वह काव्य द्वारा समाज की विद्रूपताओं को दूर कर मानव कल्याण का पद प्रशस्त करता है।"[1]

डॉ. मंगलम राजेश का यह कथन आज के संदर्भ में बहुत संगत लगता है। मानव जीवन आज बहुत ही कठिन समय से गुज़र रहा है। सब कहीं कुरितियाँ, अनितियाँ, विद्रूपताओं का भरमार है। वर्तमान लोग एक प्रकार की अरक्षितावस्था महसूस करते जा रहे हैं। धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर लोग खून करते जा रहे हैं। आज का युग सांप्रदायिकता जातिवादता आदि का प्रचार प्रसार का युग रहा है। इस संदर्भ में मानवीयता के स्थान पर अमानवीयता सामाजिक मूल्यों के स्थान पर अवमूल्य की स्थापना लोग करते जा रहे हैं। समकालीन कविता समय का सापेक्ष लेकर चलती है। इसमें साधारण जनता की दुविधा की अभिव्यक्ति होती है। आम जनता की त्रासदी भरी जीवन की अभिव्यक्ति करके सीधे यथार्थ की ओर उन्मुख होना समकालीन कविता की खासियत है।

व्यंग्य वस्तुतः कुरीतियों, असंगतियों, विद्रूपताओं, अन्यायों, अत्याचारों, भ्रष्टाचारों, अनीतियों, पाखंडों और मिथ्याचारों के विरुद्ध आवाज़ बुलंद करने वाली सशक्त और ताकतवर औजार है। सामाजिक स्तर पर जो बुराइयाँ होते हैं उन बुराइयों पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार-विमर्श करना व्यंग्य का प्रधान उद्देश्य रहा है। इस संदर्भ में आचार्य हरिशंकर परसाई का कथन को यहाँ जोडना उचित लगता है, उनके अनुसार "व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखंडों का पर्दाफाश करता है। जीवन के प्रति व्यंग्यकार की उतनी ही निष्ठा होती है, जितनी गंभीर रचना की वल्कि ज़्यादा ही। अच्छा व्यंग्य सहानुभूति का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण होता है।"[2]

सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्र की जटिल समस्याओं का प्रस्तुतीकरण समकालीन साहित्यकार ने किया है। इसमें प्रमुख और प्रतिभा धनी साहित्यकार है कुमार अंबुज। जिन्होंने अपनी सृजनात्मक अंतर्दृष्टि से वर्तमान काल की विसंगतियों को बेपर्दा करने की कोशिश की है। सामाजिक विषमताओं के प्रति उनकी अंतर्दृष्टि बहुत गहरा और विचारोत्तेजक है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक विसंगतियों के प्रति वे करारा व्यंग्य प्रकट करते हैं। डॉ. बाबू जोसफ़ का कथन पर इस संदर्भ में दृष्टि डालना अनुचित न होगा, उनकी राय में- "कुमार अंबुज की कविताओं में समय के अंतर्विरोध और उसमें मौजूद अमानवीकरण की पहचान है। अपने समय के अंतर्विरोध और उसमें मौजूद अमानवीकरण के खिलाफ लड़ने के लिए कवि की रचनाशीलता ही सबसे कठोर और निर्णायक प्रतिक्रिया है, और सबसे अच्छा औजार भी।"[3]

श्री अंबुज की कविताओं में सामाजिक अंतर्विरोधी व्यवहारों के प्रति आक्रोश और विद्रोह की अभिव्यक्ति होती है। मानवीय संवेदनाओं से युक्त उनकी कविताएँ तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक जटिल समस्याओं का लेखाजोखा है। वे आम आदमि या श्रमजीवी वर्गों के पक्षधर रहे। उन्होंने शोषक या पूँजीपतियों के कुव्यवहारों के प्रति अपने तीव्र घृणा की अभिव्यक्ति की है। उन्होंने अपनी कविताओं में अन्याय, अत्याचार और अनाचारों के प्रति आक्रोश प्रकट किया। उनकी कविताओं में कमज़ोर वर्गों के दर्दनाक भरी जीवन के प्रति सहानुभूति परिलक्षित होती है। वर्तमान समाज की विसंगति और असंगतियों की ओर आत्मसात् करके इन तमाम विसंगतियों के ऊपर प्रतिकार भावना से व्यंग्य की अभिव्यक्ति करना उनकी कविताओं की प्रमुख खासियत है। उनकी कविताओं की प्रमुख आवाज़ साधारण या आम आदमि, ग्रामीण या गाँव वालों के जीवन्तता और शहरी जीवन के विविध रंग आदि रहे। शहरी जीवन के बेचैनी, घुटन कुंठा, अविश्वास, संघर्ष शीलता, धोखादड़ी, दंभ अहंकार, दोखलेपन, छल कपट निराशा और ग्रामीण जीवन की मिट्टी की सुगंध निष्कलंक भावना आदि की संस्पर्श उनकी कविताओं में दिखायी पड़ती हैं। अंबुज की कविताएँ सामाजिक वैषम्यों को, संघर्षशील जीवंत घटनाओं को प्रस्तुत करती हैं। उत्तराधुनिक मानवीय जीवन के आत्मसंघर्ष की अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में होती हैं। वर्तमान समय में मानवीय संबंधों का बिखराव हो रहा है। इसका सटीक प्रस्तुतीकरण अंबुज की कविताओं में स्पष्ट झलकता है। विषय वैविध्यता उनकी कविताओं की प्रमुख विशेषता है। उन्होंने अपने निज अनुभवों को अपनी कविताओं के माध्यम से बेपर्दा करने की चेष्टा की है। 'अतिक्रमण' कविता संग्रह इसका सबूत है। इसमें उन्होंने वर्तमान या समसामयिक ज्वलंत मुद्दों को पेश करने का प्रयास करता है। उनकी कविताएँ समकालीन यथार्थ परिस्थितियों को हमारे सामने प्रतिपादित करती हैं।

नैतिक मूल्यों का ह्रास आज हमारे समाज में आम तौर पर चल रहा है। मानवीय कलुषित वातावरण का चित्रण अंबुज की कविताओं में दिखायी पड़ती हैं। यह युग अनैतिकता, अवैचारिकता, अमानवीयता, असत्य, अविश्वास का युग रहा है। इस ज़माने में मानवीयता, मनुष्यता का कोई अर्थ नहीं है। इन सब को पूँजी लोग कटघरे में खड़ा कर दिये हैं। वर्तमान समय की विसंगतियों, असंगतियों के प्रति सजग जागृत दृष्टि उनकी कवितताओं की विशेषताएँ हैं। वर्तमान समय में बदलते रहे निरर्थक आवाज़ें उनकी कविताओं में उभरकर सामने आ जाती हैं। उनकी कविताएँ प्रवंचना के खिलाफ प्रत्यंचना की आवाज़ बुलंद करने वाली कविताएँ हैं। सरल सी लगने वाली उनकी कविताओं में व्यंग्य की तीखी अभिव्यक्ति होती है। विषय विविधता से ओतप्रोत अंबुज की कविताएँ समकालीन हिन्दी साहित्यिक जगत् के अनमोल मोती है। एक प्रकार की अजनबीपन उनकी कविताओं की विशेषता है जो लोगों की मन को गहराई तक जाकर छूने वाली है। वर्तमान समाज की ओर होने वाले अतिक्रमणों को बहुत ही बारीकी ढ़ंग से प्रस्तुत करने में अंबुज जी सिद्धहस्त है। सूक्ष्म से सूक्ष्मतर लगने वाली घटनाओं को अपनी कविता का विषय बनाने में अंबुज जी सक्षम है। उनकी कविताओं में समसामयिक अंतर्विरोधों की पहचान होती है। संवेदन शून्यता,

अकर्मण्यता आदि उनकी कविता की प्रधान आवाज़ रही है। दरअसल आपकी कविता में वर्तमान या तात्कालिक समय की क्रूरता, अमानवीयता, स्वार्थता आदि सामाजिक विकृतियों को हमारे सामने प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास हुआ है। एक प्रकार का खुलापन उनकी रचनाओं में दिखायी देता हैं। समाज की ओर, सांस्कृतिक विरासत की ओर, राजनीति की ओर, धर्म की ओर उनकी अलग-अलग दृष्टि होती हैं। उनकी कविताएँ जीवन की यथार्थ भावनाओं और ऊबों को शिनाख्त करती है। 'अतिक्रमण' में कुमार जी ने तद्युगीन सामाजिक जन जीवन की तमाम विसंगतियों को एक जनवादी कवि के रूप में देखने, परखने की कोशिश की है।

सामाजिक मानव मूल्यों का ह्रास आज के ज़माने में साधारण सी बात बन गयी है। नैतिक मूल्यहीनता युगीन संदर्भ में एक प्रमुख मुद्दा बन गया है। मानवीयता का छूटापन आज के ज़माने में हो रहा है। औद्यौगिकीकरण ने मानव को अपनी ओर या खुद की ओर सोचने की मज़बूर करती है। मानव आजकल आत्मकेन्द्रित बनते जा रहे हैं। अपने पड़ोस में क्या हो रहा है इसे समझने के लिए भी लोग तैयार नहीं है। वे सिर्फ अपने परिवार वालों के प्रति ख़याल रखते हैं। संबंधों का टूटन हर एक पारिवारिक जीवन में हावी हो रहा है। इन सबके केन्द्र में औद्यौगिकीकरण की कराल हस्त है। मनुष्य को मनुष्य पहचान नहीं पाते हैं। अधिकार या धन हासिल करने के लिए मानव, मानव को भी मार डालने के लिए हिचकते नहीं। अपने अधिकार को और उसके मुताबिक आने वाले मान-सम्मान को बनाये रखने के लिए लोग हमेशा गलत कर्म कर रहे हैं। समाज में लालसाएँ, आशाएँ, इच्छाएँ बढ़ते जा रहे हैं। अपनी इच्छा पूर्ती के लिए लोग किसी भी काम करने के लिए तैयार है। आज कल मनुष्य ही मनुष्य पर आक्रमण करते रहते हैं। इस पर व्यंग्य करते हुए 'अतिक्रमण' कविता में कवि कहते हैं-

"फिर मनुष्य ही करते हैं मनुष्यों पर अतिक्रमण
घेरते हुए खुद को वस्तुओं से
आसक्ति की चाशनी में वे पागते चले जाते हैं।"[4]

भूमंडलीकृत एवं उदारीकृत अर्थतंत्र व्यवस्था ने मज़दूर या आम जनता की जीवन को उदासीन या कष्टदायक बना दिया है। लेकिन पूँजीवादी या सामंतीवादी और राजनैतिक लोगों की प्रगति या विकास इस संदर्भ में बढ़ता जा रहा है। परंतु आम जनता की स्थिति खतरनाक है। अर्थ केंद्रित समाज में पूँजीपति या मालिक लोगों का विकास ही हो रहा है। दरअसल सामाजिक विध्वंसक प्रवर्तियों का कारण पूँजीपति वर्ग तथा सामंती वर्ग ही है। इन्होंने सत्ता को अपने हाथों में रखकर न्याय, नीति, और कानून को अपने कब्जे में कर लिया है। जब तक समाज में पूँजीपती या सामंती वर्गों का वर्चस्व रहेगा तब तक कानून इनके हाथों में रहेगा जो आम जनता को शोषण का शिकार बनाते जा रहे हैं। प्रजातंत्र और प्रशासन में कानून का महत्वपूर्ण स्थान होता है। आम जनता की रक्षा करने के लिए कानून का निर्माण हुआ है। पुलीस और कानून आम जनता के लिए और उनकी जीवन सुधार के लिए होता है बल्कि वर्तमान समय में पुलीस मालिक लोगों की सेवक बनते जा रही हैं। पुलीस आज रक्षक न बनते जा रही हैं बल्कि भक्षक बनते जा रही हैं। इस पर व्यंग्य उनकी कविता 'बहस की ढलान पर' की इन पंक्तियों में हम महसूस कर सकते हैं-

"कुछ कहने की कोशिश करता था
कि हम विश्वास करते हैं जीने की इच्छा रखनेवाले मनुष्यों में
और दया भी नहीं करना चाहते हैं राजनेताओं पर
जानते हैं कि क़ानून ने हमें सबसे ज़्यादा परतंत्र बना रखा है
हमें समझना चाहिए कि आ सकने वाले सुंदर जीवन के लिए
ठुकराना ही होता है वर्तमान के सुखों का थाळ।"[5]

इस प्रकार प्रशासन, नीति, नियम, प्रजातंत्र के प्रति अंबुज जी का विचार बहुविध आयामों से युक्त है साथ-साथ गहरा भी है।

अंबुज जी की कविताएँ तत्कालीन समसामयिक मुद्दों को हमारे सामने रखते हैं। आपकी कविता की वाणी बाज़ारवाद, मानवीय स्वार्थता, अमानवीयता, अपराधीकरण आदि बन गये हैं। वे इन प्रवृत्तियों के कट्टर विरोधी भी हैं। 'एक बार फिर' कविता में उन्होंने बाज़ारवाद के प्रत्याघात के बारे में बताया है। समकालीन समाज में बाज़ारवाद का प्रभाव हर कहीं हावी हो रहा है। मानव संवेदन हीन बनते जा रहे हैं। बाज़ारी संस्कृति के शिकंजे में फँसकर लोग तड़प रहे हैं। बाज़ार मनुष्य को बिकाऊ चीज़ बनते जा रहे हैं। अल्प वस्त्रधारी स्त्रियों की माँग बाज़ार में अधिक हो रहा है। बाज़ारवाद के नाते हम हमारे संस्कृति, आचार-विचार को भूलते जा रहे हैं। मानवीय संवेदनाएँ इस संदर्भ में शून्य बनते जा रहे हैं। बाज़ारवाद का असर समाज में पड़ने के कारण लोग स्वार्थी बन गये हैं। उदारीकरण, वैश्वीकरण के इस दौर में पूँजी लोग ने हमारे दिनचर्या को तय किया है। सुबह से लेकर रात तक हर एक संदर्भ में हम बाज़ारवाद के शिकंजे में फँसते जा रहे हैं। इस अवस्था पर व्यंग्य के माध्यम से विद्रोह विक्षोभ करके कवि इस प्रकार ढाल देते हैं कि-

"हर कदम पर देखते हुए बाज़ार
गुज़रते हुए हर क्षण एक न एक बाज़ार से
हम भूलते हैं अकसर
कि कब बाज़ार में हैं और कब बाज़ार में नहीं
जहाँ ज़रा भी आबादी वहीं दिख पाता बाज़ार
देखते हैं फिर कि जहाँ दो जन हुए इक्कट्ठे
वहीं हो जाता बाज़ार
अब बाज़ार का बनना इस दुनिया की दिनचर्या में
हर पल होने वाली एक मामूली सी घटना।"[6]

बाज़ारवाद, उदारीकरण, पूँजीवाद आदि ने हमारी संस्कृति, रीति-रिवाज़, आचार-अनुष्ठान और सांस्कृतिक विरासत को चकनाचूर कर दिया है। हमारे मानवीय संबंधों पर बिखराव ला दिया है। खुली बाज़ारी, मुक्त अर्थव्यवस्था आदि हमें संवेदन शून्य बना दिया है। इस संदर्भ में इन्सान, इन्सान नहीं बनते जा रहे हैं। इस पर विचार करते हुए वरिष्ठ व्यंग्यकार डॉ. ओंकारनाथ चतुर्वेदी अपना मंतव्य इस प्रकार प्रकट किया है- "मुक्त बाज़ार व्यवस्था – खुली बाज़ारी विकसित उपभोक्ता संस्कृति के आवश्यक तत्व हैं। केवल उपभोग, भोग के लिए उपभोग और उत्पादन के असुन्तलन से बेखबर। बैंकों के उधार की बैसाखियों पर खड़ी बनावटी क्रय शक्ति राष्ट्र को कर्ज के किस गढ्ढे में फेंकेगी सोचा है आपने ? अरे! इन्सान को इन्सान तो रहने दो।"[7]

आजकल मानवीय संबंधों में बनावटीपन हो रहा है। इसका प्रमुख कारण बाज़ारवाद और मीडिया है। बाज़ारवाद का प्रचार प्रसार मीडिया के द्वारा किया जाता है। इस के कारण मानवीय संबंधों में बिखराव हो रहा है। मानवीय संबंधों का ग्राफ़ जो है आज के वैश्वीकरण के ज़माने में घटा हुआ है। मानव-मानव के बीच में प्रेमात्मक, आत्मपरक और रागात्मक जो संबंध है वह घट रहा है। इस संदर्भ में सब कहीं सौदा चल रहा है। इस पर व्यंग्य करते हुए कवि ने 'एक बार फिर' कविता में पेश किया है-

"कोई आपको प्रेम करेगा
कोई सुनाएगा बाँसुरी
कोई आपको एक घर का रास्ता बताएगा
कोई आपके दुखते कंधे पर रख देगा हाथ
कोई बताएगा मुक्ति का मार्ग
कोई करेगा आपको युद्ध के लिए तैयार
और फिर कह देगा एक दिन कि यही तो है मेरा व्यापार
कहीं कुछ नहीं टूटेगा, कुछ नहीं तड़केगा
नियम विरुद्ध नहीं होगा कुछ भी
दुकानदारी का यही चलन है
यही रीति।"[8]

आज समाज में सांप्रदायिकता, जातिवादिता और शोषण का बोलबोला हो रहा है। मानवीयता और मानवीय मूल्यों का क्षरण इस भूमंडलीकरण के संदर्भ में हो रहा है। वर्णाश्रम के नाते समाज में दो वर्ग होते हैं। एक शोषक और दूसरा शोषित वर्ग। इन दो वर्गों के बीच में सैद्धांतिक स्तर पर और बौद्धिक स्तर पर संघर्ष होता रहता है। दरअसल वर्णाश्रम का उपज है, जातिवादिता और सांप्रदायिकता आदि। वर्णाश्रम वास्तव में ऊँच-नीच भेद भाव की रेखा खींच लिया गया है। कवि यहाँ शोषण मुक्त समाज की कामना करते हैं। सभी लोगों को बराबर से देखना मानवीयता एवं मनुष्यता का सच्चा अर्थ है। सभी को बराबर दृष्टि से देखने के

लिए कवि यहाँ आह्वान करते हैं। सामाजिक मानवीयता के बीच में रेखा खींचने वाले लोगों के प्रति आक्रोश उनकी कविता 'रेखागणित' में अपनी अन्विति भाषा के माध्यम से कवि बेपर्दा करते हैं-

> "अलग-अलग दिशाओं में जाने वाली रेखाओं में प्रकट
> असमान ज़िंदगियों के बीच की हर क्षण बढ़ती दूरी
> और वहीं कहीं छिपे वर्ग-संघर्ष के बीज
> समाज के स्वप्न में चीखता है स्वप्नद्रष्टा
> बनाओ समबाहु समकोणीय चतुर्भुज-
> शोषण मुक्त एक वर्ग !"[9]

वर्ग संघर्ष हमेशा समाज में होता रहता है। इसकी अनावश्यकता और भीषणता पर कवि यहाँ इशारा करते हैं।

निष्कर्षत

हम यह कह सकते हैं कि कुमार अंबुज जी समकालीन हिन्दी साहित्यिक जगत् के बहुमुखी प्रतिभा संपन्न कलाकार है। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से समसामयिक मुद्दों को गहन और बारीकी दृष्टि से देखने का भरसक प्रयास किया है। उन्होंने अपनी भोगे हुए निजी अनुभव को अपनी कविताओं में अंकित किया है। सामाजिक प्राणी होने के नाते जो जो विसंगतियाँ हमें भुगतना पड़ता है, उसका पूरा समझ उनकी कविताओं में दिखायी देती हैं। अपनी बातों को सहज और सरल रूप से प्रस्तुत करने में वह सक्षम सिद्ध हुआ है। वे तद्युगीन परिवेशगत विसंगतियों और विद्रूपताओं के प्रति बोधवान भी है। इस लिए हम यह सकते हैं कि सागर में गागर भरने की क्षमता उनमें निहित है। मानवीय संवेदना उनकी कविता में दिखायी देती है। बहुत ही गहरात्मकता के साथ श्रमजीवी वर्गों की दर्द भरी आवाज़ को अपनी कविताओं में खींच लेने में अंबुज जी सक्षम भी हुआ है। वह सराहनीय बात भी है।

संदर्भ

1. डॉ. मंगलम राजेश, साठोत्तरी हिन्दी कविता में हास्य-व्यंग्य, भूमिका से पृ. सं .6
2. आचार्य हरिशंकर परसाई, सदाचार का ताबीज़, पृ. सं. 10
3. डॉ. बाबु जोसफ़ , समकालीन हिन्दी कविता और कुमार अंबुज, पृ. सं. 39
4. कुमार अंबुज, अतिक्रमण, अतिक्रमण, पृ. सं. 27
5. वही, पृ. सं. 29
6. वही, पृ. सं. 56
7. डॉ. ओंकारनाथ चतुर्वेदी, व्यंग्य शतकम्, पृ. सं. 38
8. कुमार अंबुज, अतिक्रमण, एक बार फिर, पृ. सं. 57
9. वही, पृ. सं. 34